Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

छायावादी काव्य में सामाजिक यथार्थ

विकास सिंह[1]

हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' एक महत्वपूर्ण युग है। अगर हम काव्यों की बात करें तो इस युग में काव्य काफी संख्या में लिखी गई। छायावादी काव्य में कल्पना, सौन्दर्य, प्रकृति, निराशा, प्रेम, नारी सौन्दर्य, आदि के चित्र ही नहीं, बल्कि उसमें सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतनाशक्ति भी है। छायावाद की आलोचना करने वाले डॉ. नामवर सिंह ने भी बाद में इस काव्यधारा के गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है– ''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और उसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का अर्थ विस्तार होता गया।''[2]

छायावादी कवियों ने अपने काव्यों में सामाजिक यथार्थ को बड़ी गहरी से व्यक्त किया है। प्रश्न यह उठता है कि समाज क्या है ? यह एक महत्वपूर्ण विषय है। समाज की परिभाषा करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाईवर ने कहा है– ''मनुष्य का मनुष्य के साथ इच्छित संबंध ही समाज है।''[3] मैकाइवर ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि मानवीय इच्छाओं के संबंध से ही समाज का निर्माण होता है। समाजशास्त्र की प्रसिद्ध विदूषी डॉ. प्रभावती सिन्हा 'समाज' की परिभाषा देती हुई यह कहती है– ''समाज शब्द का अर्थ चाहे जिस किसी अर्थ में लिया जाए, मनुष्यों का वही समूह समाज का निर्माण करता है जिसका कुछ सामान्य हित हो और जो सामान्य हित सार्वजनिक हित में हो।''[4] अतः समाज एक ऐसा सुव्यस्थित एवं अनुशासित जन–समूह है, जिसका उद्देश्य मानवप्रेम, सौहार्द एवं जनकल्याण है। सामाजिक चेतना का संबंध मानव चेतना के सामाजिक रूप से है। चेतना शब्द मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। यह अन्तःकरण या मन से विशेष रूप से संबंधित है। मनः के तीन रूप है– अचेतन, अर्द्धचेतन, चेतन। इनमें से चेतन में ज्ञान, सजगता सबसे अधिक होती है। वस्तुतः चेतन शब्द का अर्थ होता है सजीवता, सजगता, जीवन्तता आदि अर्थात् जिसमें ज्ञान, प्रवाह, शक्ति हो, जो जड़ नहीं हो। जड़ शब्द अज्ञानता, निर्जीवता का प्रतीक है। जब मनुष्य में किसी सामाजिक कार्य के प्रति जागरूकता या ज्ञान का उदय होता है तो वह जागृत भाव सामाजिक

[1] **शोध छात्र, (हिन्दी विभाग) बी.एच.यू**

[2] छायावाद : डॉ. नामवर सिंह, पृ0 15

[3] नागरिक जीवन : डॉ, प्रभावती सिन्हा, भाग–5, पृ0 1

[4] वही,

चेतना कहलाता है। डॉ. भगवतीचरण वर्मा के अनुसार ''साहित्य का स्रोत सामाजिक चेतना में है, वैयक्तिक प्रेरणा में नहीं है– या यह कहना अधिक उचित होगा कि साहित्य स्रोत सामाजिक चेतना से अनुशासित वैयक्तिक प्रेरणा में है।''[1] सामाजिक चेतना मानवीय प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है एवं साहित्य सामाजिक चेतना से प्रेरित होते है। इसी सामाजिक चेतना की शक्ति से समाज, साहित्य, साहित्यकार आदि प्रभावित, प्रेरित एवं संचालित होते रहते हैं।

छायावादी युग सामाजिक दृष्टि से भारत के लिए अत्यंत उथल–पुथल का युग था। एक ओर समाज अपनी पुरानी प्रवृत्ति को छोड़ने के लिए तैयार न था, तो दूसरी ओर विश्व में होने वाली राजनीतिक और आर्थिक क्रांतियों का मध्यवर्ग की चेतना पर तेजी से प्रभाव पड़ रहा था। फलस्वरूप नयी पीढ़ी के कवियों में समाज में फैली पुरानी प्रवृत्तियों के प्रति घोर असन्तोष उत्पंन हुआ। कुछ ने विद्रोही बनकर समाज में प्रचलित मान्यताओं का विरोध पहले ही शुरू कर दिया। उनका यह विरोध सक्रिय था। ये कवि यथार्थ से पराजित नहीं कहे जा सकते क्योंकि उन्होंने सामाजिक जीवन के लिए नये मार्गों की खोज किये।

छायावादी कवि समाज के लगभग सभी पहलुओं पर महत्वपूर्ण विजय प्राप्त कर चुके हैं। इनकी दृष्टि, समाज की समस्याओं, उसके समाधान और एक आदर्श समाज की स्थापना में विशेष रूप से जागरूक रही है। लेकिन इन कवियों का लक्ष्य एक आदर्श समाज की स्थापना करना था। इनकी सामाजिक धारणाओं का उद्‌गम स्रोत विभिन्न क्षेत्रों से था।

छायावादी कवियों ने सामाजिक बन्धनों से ग्रथित व्यक्ति को स्वच्छन्द होने की सबल प्रेरणा दी तथा बन्धन के मोह से छुटकारा दिलाने के लिए उसने अतीत के ऐश्वर्य का ध्यान दिलाते हुए मानव द्वारा पोषित वर्तमान समस्याओं के प्रति क्षोभ तथा घृणा की भावना उत्पन्न की। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा की रचनाएँ विश्व–साहित्य की अमर निधियाँ है। जयशकर प्रसाद अपने घरेलू जीवन, संस्कार, पारिवारिक प्रभाव से काफी प्रभावित हुए थे। इन्हीं पारिवारिक एवं सामाजिक अनुभूति को अपने काव्य में जगह दिये है–

''तुच्छ नहीं है, अपना सुख भी/श्रद्धे ! वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन को तो/वही चरम सब कुछ है।''[2]

प्रसाद ने अपनी काव्यों में नारियों को सदियों की दासता से मुक्त कराकर उन्हें सामाजिक अधिकार प्राप्त कराया। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा 'नारी का उदात्तीकरण' कर नारी की शक्ति को समाज में प्रदर्शित किया। प्रसाद ने कामायनी में नारी का उदार चित्र बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है–

''नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,

---

[1] साहित्य का सिद्धान्त तथा रूप : भगवतीचरण वर्मा, पृ0 32–33

[2] कामायनी : जयंशकर प्रसाद, पृ0 138

जीवन के सुन्दर समतल में।''[1]

समाज में उपेक्षित नारी के प्रति प्रसाद जी हमेशा सचेष्ट रहे हैं। इसकी उपेक्षा के लिए उन्होंने पुरुष की पुरुषत्व मोह को उत्तरदायी ठहराया है–

''तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में
कुछ सत्ता, है नारी की।''[2]

उनके काव्य पुरुष समाज को जन–कल्याण और विश्व बंधुत्व का संदेश देते है–

''औरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर ले, सब को सुखी बनाओ।''[3]

जयशंकर प्रसाद ने एक आदर्श समाज की स्थापना का प्रयास किया। उनके साहित्य में समाज की अधिक दुर्दशा, नारी उत्पीड़न, शोषण, वर्ग–वैषम्य, आदि के चित्रण मिलते हैं फिर भी उसके समाज की कल्पना आदर्शात्मक व्यवस्थापूर्ण तथा जीवन की सुख–सुविधा से पूर्ण रही है। प्रसाद जी ने सामाजिक परिस्थितियों में पिसते हुए जन–जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी पैनी दृष्टि समाज की आर्थिक समस्याओं की अतिरिक्त अन्य उन समस्याओं की तरफ भी गया जिसके कारण समाज की आदर्शात्मक नींव ढह रही थी। प्रसाद जी ने एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए दहेज प्रथा, बहु–विवाह, छुआछुत आदि की घोर निंदा की। विवाह में दहेज प्रथा तथा विवाह सम्बन्धी अन्य हानिप्रद कुप्रथाओं का विरोध करते हुए कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ''विवाह में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। उसमें नियमों का बन्धन नहीं सम्मिलित होना चाहिए।''[4]

सुमित्रानन्दन पंत ने भी समाज की जटिलतओं से लड़कर भेद–भाव समाप्त कर एकता का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है–

''आओ स्थितियों से लड़े/साथ–साथ आगे बड़े,
भेद मिटेंगे निश्चय/एक्य की होगी जय।''[5]

कवि का यह अटूट विश्वास है कि एकता से ही समाज में बदलाव संभव है। कवि पंत ने समाज के नव–निर्माण में न केवल श्रमिक तथा कृषक वर्ग के जीवन सुधार का सर्वस्व माना है बल्कि नारी का स्वतंत्रता, शिक्षा एवं उनमें नयी जागृति की आवश्यकता को महत्वपूर्ण बताया है क्योंकि तत्कालिन समाज में नारी की ऐसी स्थिति थी कि समाज में वह कोई महत्वपूर्ण इकाई नहीं मानी जाती थी। वह अपने हृदय के विचारों एवं प्रेम भावनाओं को स्वतंत्र रूप में व्यक्त नहीं कर सकती थी। उसके लिए पर्दा अनिवार्य है।

---

1 वही, पृ0 114

2 वही, पृ0 170

3 वही, पृ0 132

4 कंकाल : जयशंकर प्रसाद, पृ0 173

5 स्वर्णधूजि : सुमित्रानन्दन पंत, पृ0 18

बाहर आने से असमर्थ कर दी गई। दृष्टिपात एवं स्पर्श मात्र से कलंकित मानी गयी–

''वह समाज की नहीं इकाई, शून्य/समान अनिश्चित,
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर/सकती नहीं प्रदर्शित।
दृष्टि, स्पर्श संज्ञा से वह हो/जाती सहज क्लंकित।''[1]

वे पुरुष समाज को नारी के जीवन को नष्ट करने का दोषी और उत्तरदायी बतलाती हुई कहती है–

''मैं यदि फिसलूंगी युग पथपर
प्रिय, तुम होगे उत्तरदायी।''[2]

पंत जी नारी को समाज में समान अधिकार दिलाने के पक्षधर थे। उनके अनुसार नारी समाज में पुरुष की छाया बन कर पीछे–पीछे चलती है, पशु सी पालित–पोषित, हिरणी की तरह भय खायी हुई। इसलिए पंत जी नारी को मुक्त करने के लिए जन–समूह का आह्वाहन करते हैं–

''मुक्त करो नारी को
अबल चिर सखी, प्यारी को।''[3]

आशावादी कवि पंत समाज में व्याप्त शोषण की अतृप्त लालसा, जीवन दुर्दुशा, भूख से छटपटाते जन–समुदाय को देखकर उनके सुखमय जीवन के प्रति रोमाण्टिक कवि शैली की तरह पूर्ण आशान्वित है।

छायावादयुगीन कवि निराला का ध्यान समाज के ऐसे वर्ग की तरफ गया है जो कि सच्चे समाज सेवी का स्वांग रचकर अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं। वे हैं– स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचने वाले शहरों के सभासद। जिनके माध्यम से अफीम, गांजा, चरस तथा तरह–तरह की विलायती शराब चलती है।

भिक्षुक वर्ग समाज में मानव से परे पशु–जगत की इकाई बन गया है। अपनी भूखाग्नि की ज्वाला को शांत करने के लिए अब उसे पशुओं से भी युद्ध करना पड़ता है। सड़क पर फेंके हुए जूठे पत्तल को जीभ से चाटकर अन्न स्वाद की यादाश्त के लिए उसे कुत्तों से समर करने के लिए तत्पर रहना पड़ता है–

''चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।''[4]

निराला समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा समस्त धर्म बाह्यआडम्बर के खंडनकर्ता ही नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष प्रमाण थे। पुत्री सरोज के विवाह में उन्होंने वैवाहिक पद्धति की जीर्ण–शीर्ण अहितकर परम्परा को बड़ी ही निर्भीकतापूर्वक तोड़ा है इस पक्ष में महाकवि की गरिमा मण्डित ललकार

---

1 ग्राम्या : सुमित्रानंदन पंत, पृ0 85

2 युगवाणी : सुमित्रानन्दन पंत, पृ0 147

3 युगवाणी : सुमित्रानन्दन पंत, पृ0 64

4 अपरा (भिक्षुक) : निराला, पृ0 67

है– ''तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम।''[1] उनकी कविता सामाजिक परंपराओं के ध्वंस में ही नहीं, बल्कि देश के उत्थान के लिए भी भारतवासियों में मोह भावना जागृत करता है।

निराला सामाजिक बंधनों से जकड़ी हुई नारी को मुक्त करना चाहते हैं। उनकी कर्म–रत मजदूरिन स्वावलम्बन और परिश्रम के प्रतीक रूप में दिखलाई पड़ती है–

''वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।''[2]

छायावादीयुगीन समाज के फैले नगरी जीवन के प्रति हुए अन्याय का मुख्य कारण पुरुष वर्ग का स्वार्थ है। हमारे समाज में स्वार्थ के कारण पुरुष मनुष्यता का कलंक है। तत्कालीन समाज की कतिपय प्रमुख अव्यवस्था के दुष्परिणाम का यही कारण है जिसके प्रति महादेवी वर्मा के साहित्य (विशेषतः गद्य साहित्य) में घोर असंतोष की प्रबल शृंखला में स्मृति की कड़ियाँ का अटूट सम्बन्ध दृष्टिगत होता है–

''सब आँखों के आँसू
सबके नयनों में सत्य पला।''[3]

'विधवा जीवन के प्रति पुरुष समाज बिल्कुल उदासीन रहा है। विधवा–प्रथा आज भी समाज की समस्याओं की शृंखला की अग्रिम कड़ी है। यदि इस प्रथा का उन्मूलन हो जाता तो बेबस, दयनीय, अबला विधवा का जीवन तथा नारी जीवन के प्रति दया एवं ममता का अमर इतिहास बन जाता, क्योंकि स्त्री के विधवा होते ही उसकी आर्थिक समस्या भयावह हो उठती है। उसका जीवन दुरूह हो जाता है। यदी भरण–पोषण की समस्या से वह निश्चिन्त है तो रक्षक के अभाव में दुराचार में प्रवृत करने वाले प्रलोभनों से घिरी रहती है। और यदि सम्बलहीन है तो उसकी आवश्यकता ही अन्य संसाधनों के अभाव में बुरे मार्ग को स्वीकार करने के लिए उसे विवश कर देती है।'[4] विधवा होते ही उसके जीवन के संजोए सारे स्वप्न टूट जाते हैं। महादेवी जी ने नारी–चित्रण में जहाँ एक ओर उनके दयनीय और अभिशप्त जीवन के चित्र है, वहीं उनकी पीड़ा में सामाजिक उपेक्षा का गहरा भाव दिखलाई पड़ता है। वे जीवन के दुःखों से इतना धुल–मिल गई हैं कि उन्हें सुख–दुख का स्वाद भी मालूम नहीं–

''दुख–सुख में कौन तीखा।

---

1 अपरा (सरोज स्मृति) : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ0 156

2 अनामिका : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ0 81

3 दीपशिखा : महादेवी वर्मा, पृ0 27

4 शृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ0 133, हमारी समस्यायें

मैं न जानी और न सीखा।'[1]

महादेवी के पथ में समाज सूनेपन को बरसा रहा है परन्तु वह इसके बदले समाज को प्यार ढाल कर दे रही है।

अर्थ संकट समाज का एक प्रधान संकट है। इसी कारण गरीब तथा अमीर के जिन्दगी के बीच बहुत विशाल फासला बना हुआ है। जहाँ धनी वर्ग ऊँचे प्रासादों में बैठकर स्वर्गिक जिन्दगी का वैभव लूट रहा है। सन् 1943 में कलकत्ते में अकाल का वर्णन शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने कुछ इस प्रकार किया है– गलियों, सड़कों और फुटपाथों पर क्षुधाग्रस्त मानव कंकाल तड़प रहे है। जिनके पीठ और पेट का पता नहीं है, शरीर का चर्म सूख कर कंकाल में चिपक गया है–

''पेट पीठ का पता नहीं है/रहा न तन में चाप
सुबह कहाँ जिनके जीवन में/रही शाम ही शाम।'[2]

निष्कर्षत उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि छायावादी कवियों की दृष्टि समाज में विकसित उन रूढ़ियों की तरफ पहुँची, जिससे समाज का मार्ग अवरूद्ध हो चुका था। समाज तर्क–भेद, जाति–भेद, धर्म–भेद आदि दूषित ज्वालाओं से झुलसता जा रहा था। समाज में स्वार्थों के वशीभूत लोगों का नैतिक पतन हो रहा था। छायावादी कवियों ने समाज की उपेक्षित अबला नारी को सबल बनाने के लिए सामाजिक अधिकारों की मांग की है। इन कवियों ने भिक्षुक में दयनीय जीवन के प्रति गहरी सहानुभूति प्रदर्शित की है। इस युग के कवियों ने सामाजिक विषयों को लेकर बहुत ही प्रभावपूर्ण कवितायें लिखीं जिनमें उद्‌बोधन, उत्साह, करूणा, क्रोध, सहानुभूति, सहृदयता आदि कोमल–पुरुष भावनाओं को व्यापक अभिव्यक्ति मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि कविता जीवन के अधिक निकट आयी और सामाजिक परिवर्तन में वह उपयोगी अस्त्र के रूप में इस्तेमाल होने लगी। इन कवियों ने कृषि की प्रगति के लिए उन्नतिशील कृषि यंत्रों, बीजों आदि के प्रयोग के लिए कृषक वर्ग को प्रेरित किया है। भाग्य बल पर बैठने वालों को कर्मशील होने की प्रेरणा दी गई है। इस युग का कवि जिस भावी समाज सृजन के लिए प्रयत्नशील रहा है वास्तव में वह आदर्शात्मक समाज है। इनकी समाजगत दृष्टि मानव कल्याण के लिए एक महत्वपूर्ण निधि है।

---

1 यामा : महादेवी, पृ0 224

2 प्रलयसृजन (कलकत्ते का अकाल 1943) : शिवमंगल सिंह 'सुमन' पृ0 75